SUṢAMĀ : Multidisciplinary Research Journal ISSN: 3107-4529
(International Peer-Reviewed & Refereed Journal)
Vol. 1, Issue-3, (Jul-Sep) 2025

भारतीय ज्ञान परम्परा में यम-साधना की प्रासङ्गिकता: पतञ्जलि योगसूत्र के परिप्रेक्ष्य में

Dr. Parimal Mandal
Assistant Professor, Dept. of Sanskrit
Swarnamoyee Jogendranath Mahavidyalaya
Amdabad, Nandigram, Purba Medinipur, West Bengal, India
E-mail: parimalbhu@gmail.com

Abstract: भारतीय ज्ञान परम्परा में योग एक समग्र जीवन-पद्धति के रूप में विकसित हुआ है, जिसका उद्देश्य केवल शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक उन्नति है। पतञ्जलि योगसूत्र में प्रतिपादित अष्टाङ्ग योग का प्रथम चरण 'यम' साधक के जीवन के लिए नैतिक अनुशासन की आधारशिला है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह जैसे यम-प्रविधान साधना-पथ के लिए अनिवार्य हैं। 21वीं सदी की भौतिकवादी प्रवृत्तियों, नैतिक संकटों, सामाजिक अशान्ति और मानसिक तनाव की स्थितियों में यम-साधना की प्रासंगिकता और भी बढ़ जाती है। यह शोध पत्र पतञ्जलि योगसूत्र के आलोक में यम-साधना के सिद्धान्तों का विश्लेषण करते हुए यह प्रतिपादित करता है कि भारतीय ज्ञान परम्परा की यह प्राचीन शिक्षापद्धति आधुनिक जीवन में नैतिक संवेदनशीलता, मानसिक शान्ति और सामाजिक सामञ्जस्य की स्थापना हेतु एक सशक्त माध्यम है।

Keywords: राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, अष्टाङ्गयोग, आधुनिक जीवनशैली, यम, राजमार्तण्ड, मणिप्रभा, योगसिद्धान्तचन्द्रिका।

प्रस्तावना—

भारतीय ज्ञान परम्परा में योग जीवन की समग्र साधना का मार्ग है। पतञ्जलि योगसूत्र में प्रतिपादित अष्टाङ्ग योग का प्रथम अङ्ग 'यम' साधक के आचरण, विचार और व्यवहार के लिए नैतिक दिशा प्रदान करता है। अहिंसा आदि यम-सिद्धांत आत्मसंयम, आत्मशुद्धि तथा सामाजिक सामञ्जस्य के मूलाधार हैं। वर्तमान समय में, जब भौतिक प्रगति के साथ-साथ नैतिक मूल्यों का ह्रास, मानसिक असन्तुलन और सामाजिक अस्थिरता बढ़ रही है, तब यम-साधना की आवश्यकता और प्रासङ्गिकता और भी स्पष्ट हो जाती है। आधुनिक जीवनशैली की जटिलताओं और तनावपूर्ण परिस्थितियों में व्यक्ति शान्ति, सन्तुलन और नैतिक मार्गदर्शन की खोज में पुनः पारम्परिक भारतीय ज्ञान की ओर उन्मुख हो रहा है। इसी दृष्टि से राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भी भारतीय ज्ञान परम्परा और मूल्यों पर आधारित शिक्षा, विशेषकर योग और नैतिक आचरण, को शैक्षिक ढाँचे का महत्त्वपूर्ण हिस्सा बनाने पर बल दिया गया है। इस सन्दर्भ

में अष्टाङ्ग योग, विशेषकर 'यम-साधना', एक वैज्ञानिक एवं सार्वभौमिक पद्धति के रूप में वर्तमान युग के लिए अत्यन्त सार्थक सिद्ध होती है।

योग शब्द की व्युत्पत्ति एवं परिभाषा—

'युज्यते अनेन' इस व्युत्पत्ति के साथ 'युज्' धातु से करण अर्थ में 'घञ्' प्रत्यय करके योग शब्द निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ होता है— जोड़ना अर्थात् किसी भी वस्तु से अपने को जोड़ना या किसी कार्य में स्वयं को लगाना। पाणिनीगण पाठ में तीनप्रकार 'युज्' धातुओं के उल्लेख मिलता है— 'युज् संयमने', 'युजिर् योगे' और 'युज् समाधौ'। 'युज् संयमने'- चुरादिगणीय 'युज्' धातु के अर्थ इन्द्रियों पर संयमन् करना या मन पर संयमन करना है। 'युजिर् योगे' रूधादीगणीय 'युज्' धातु के अर्थ जोड़ना, मिलाना, संयोग करना आदि है। अर्थात् जीवात्मा से परमात्मा का संयोग का योग कहलाता है। 'युज् समाधौ' दिवादीगणीय 'युज्' धातु को समाधि के अवस्था कहा गया है, जो कि जीवात्मा और परमात्मा की समता होती है। महर्षि पतञ्जलि ने योग शब्द को समाधि के अर्थ में प्रयुक्त किया है। महर्षि व्यास ने भी योग को समाधि माना है— "योगः समाधिः स च सार्वभौमः चित्तस्य धर्मः"[1]। भारतीय संस्कृति में योगविद्या का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण और विशिष्ट है। योग का उल्लेख वेदों, उपनिषदों, स्मृतियों और पुराणों में किया गया है। भारतीय दर्शन में योग को भिन्न-भिन्न तरीकों से परिभाषित किया गया है। योगसूत्र के प्रणेता महर्षि पतञ्जलि ने योग को परिभाषित करते हुए कहा है— "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः[2]"। अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध करना ही योग है।

अष्टाङ्गयोग का परिचय—

संस्कृत में 'अष्ट' + 'अङ्ग' = अष्टाङ्ग है। 'अष्ट' का अर्थ है आठ और 'अङ्ग' का अर्थ है भाग। इस प्रकार, अष्टाङ्गयोग का अर्थ है आठ अङ्गों वाला मार्ग। इसे आठ चरणों में विभाजित नहीं किया गया है, बल्कि यह आठ आयामों का एक समग्र अभ्यास है। अष्टाङ्गयोग के आठ अङ्ग हैं—

"यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि[3]॥"

अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। महाभारत में भी योगके आठ अङ्ग बताये गये है— तावदेवाष्टगुणिनं योगप्राहुर्मनीषिणः। सूक्ष्ममष्टगुणं प्राहुर्नेतरं नृपसत्तम्[4]। अब आगे अष्टाङ्गयोग के प्रथम अङ्ग यम के स्वरूप और भेद को भारतीय ज्ञान-परम्परा के सन्दर्भ में प्रस्तुत करेंगे।

यम का परिचय—

'यम' शब्द संस्कृत धातु 'यमु बन्धने' धातु मे 'घञ्' प्रत्यय लगाने पर निष्पन्न होता है जिसका अर्थ है- बाँधने वाला या नियन्त्रित करनेवाला। योगदर्शन में 'यम' का अर्थ है— *इन्द्रियों, मन तथा आचरण पर संयम स्थापित करना*। यह संयम व्यक्ति को भीतर और बाहर की अराजक वृत्तियों से नियन्त्रित करता है और योगमार्ग की स्थिर नींव रखता है। यह यम

योगदर्शन के अष्टाङ्ग योग का प्रथम अङ्ग है। यह मुख्यतः नैतिक आचरण और सामाजिक व्यवहार के नियमों का समूह है। यह हमारे आन्तरिक और बाहरी जीवन के बीच सन्तुलन स्थापित करने में मदद करता है । इसे व्यक्तिगत और सामाजिक अनुशासन के रूप में देखा जा सकता है। यम को पाँच प्रकारों में विभाजित किया गया है—

"अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरग्रहाः यमा[5]॥"

अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह— ये पाँच नियम हैं जो जीवन को शुद्ध और सन्तुलित बनाने में सहायक होते हैं।

a) अहिंसा—

अहिंसा का अर्थ है किसी भी प्राणी को शारीरिक, मानसिक या वाणी से किसी प्रकार की हानि न पहुँचाना। महर्षि व्यास ने इसे परिभाषित करते हुए कहा है—"तत्राहिंसा सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानामनभिद्रोहः[6]", अर्थात् उन यमों में से सब प्रकारके सब कालों में समस्त भूतों को पीड़ा न देना अहिंसा है । राजमार्तण्ड में भोजदेव ने "तत्र प्राणवियोगप्रयोजनव्यापारो हिंसा। सा च सर्वानर्थहेतुः। तदभावोऽहिंसा[7]।" कहकर स्पष्ट किया प्राणों का शरीर से वियोग करने के लिए जो काम किया जाता है वह हिंसा कहलाती है । वह हिंसा सर्व रूपों वाली अनर्थ का कारण है । उसका अभाव अहिंसा है। रामानन्द सरस्वती के मणिप्रभा के अनुसार— "तत्र अहिंसा नाम मनोवाक्कायैः सर्वदा सर्वभूतानामपीडनं परः शुक्ल एष धर्मः। अन्ये यमादयः एतस्या एवं शुच्यर्थाः[8]।" अर्थात् मन, वाणी और शरीर के द्वारा सभी प्राणियों को कभी भी कोई पीड़ा न पहुँचाना— यही श्रेष्ठ, शुद्ध और उज्ज्वल धर्म है। अन्य सभी यमों का उद्देश्य भी इसी अहिंसा की शुद्धि और स्थिरता प्राप्त करना है। योगसिद्धान्तचन्द्रिका में अहिंसा को केवल निषेधात्मक न मानकर संवेदनशीलता का सक्रिय अभ्यास बताया गया है— "कर्मणा मनसा वाचा सर्वभूतेषु सर्वदा अक्लेशजननं प्रोक्ता अहिंसा[9]", अर्थात् मन, वचन और कर्म के द्वारा सर्वदा सभी प्राणियों के प्रति दूसरों की पीड़ा को समझकर किया गया करुणामय व्यवहार ही अहिंसा है। अहिंसा के पालन से प्राप्त होने वाले फल के सम्बन्ध में पतञ्जलि योगसूत्र में कहा गया है— "अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः[10]।" इसका अर्थ है कि जब कोई योगी पूर्ण रूप से अहिंसा में स्थित हो जाता है—अर्थात उसके मन, वाणी और कर्म से किसी भी जीव को क्षति पहुँचाने का भाव पूर्णतः समाप्त हो जाता है— तब उसकी उपस्थिति मात्र से ही आस-पास के जीवों में वैर, द्वेष और हिंसा की प्रवृत्तियां शान्त हो जाती हैं। उसके समीप आते ही सभी प्राणी सहज रूप से शान्ति और सुरक्षा का अनुभव करने लगते हैं।

सत्य—

सत्य का अर्थ है झूठ और कपट से दूर रहना, और हमेशा सत्य बोलना और पालन करना। जब मन, वचन और कर्म में सामञ्जस्य होता है, तब वह सत्य कहलाता है। व्यक्ति को ऐसी वाणी बोलनी चाहिए जो दूसरों को कष्ट न पहुंचाए और सत्य को सही तरीके से प्रस्तुत करे।

मनुस्मृति में कहा गया है—

"सत्यं ब्रुयात्प्रियं ब्रुयात् न ब्रुयात्सत्यमप्रियम्[11]।"

अर्थात् सत्य बोलो और प्रिय बोलो, परन्तु सत्य ऐसा बोलो जो अप्रिय न हो। महर्षि व्यास भी सत्य के सम्बन्ध में कहते हैं— "सत्यं यथार्थे वाङ्मनसी। यथादृष्टं यथानुमितं यथाश्रुतं तथा वाङ्मनश्चेति। परत्र स्वबोधसंक्रान्तये वागुक्ता सा यदि न बाधिता भ्रान्ता वा प्रतिपत्तिबन्ध्या वा भवेदिति। एषा सर्वभूतोपकारार्थं प्रवृत्ता न भूतोपघाताय[12]।" अर्थात्, सत्य यह है कि वाणी और मन दोनों की यथार्थता अर्थात् जैसै अर्थ है उसके अनुसार ही कहना और मन में धारण करना । रामानन्द सरस्वती की मणिप्रभा में सत्य को अत्यन्त सरल एवं व्यावहारिक रूप में परिभाषित किया गया है— "सत्यं परहितार्थं यथार्थकथनम्[13]।" अर्थात् सत्य वही है जो यथार्थ के अनुकूल हो और जिसका उद्देश्य परहित हो। यहाँ स्पष्ट किया गया है कि मात्र तथ्यात्मक कथन ही सत्य नहीं होता, बल्कि वह कथन जो दूसरों के हित में हो और जो वाणी तथा मन की आन्तरिक सच्चाई को दर्शाए, वही वास्तविक सत्य है। नारायणतीर्थ की 'योगसिद्धान्तचन्द्रिका' में सत्य को और भी विश्लेषणात्मक रूप में प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार, सत्य का स्वरूप केवल बाह्य कथनों तक सीमित नहीं है, बल्कि वह आचरण में भी प्रकट होना चाहिए। यहाँ सत्य को उस व्यवहार के रूप में परिभाषित किया गया है जो प्रत्यक्ष अनुभव, श्रुति तथा अनुमान से प्राप्त यथार्थ ज्ञान के अनुरूप हो[14]। इस ग्रन्थ में सत्य को दो भागों में विभाजन किया गया है: कथारूप सत्य— जैसे देव, गुरु, तीर्थ आदि की सेवा के लिए किया गया यथार्थ कथन। आचरणरूप सत्य – जैसे यज्ञोपवीत धारण करना, या धर्म के अनुकूल जीवन जीना। नारायणतीर्थ इस बात को भी स्पष्ट करते हैं कि यदि कोई व्यक्ति अपनी ज्ञानशक्ति की सीमा में रहते हुए यथार्थ कथन करता है और वह तथ्य भ्रमवश गलत निकल जाए, तो भी वह असत्य नहीं कहलाता, क्योंकि उसका उद्देश्य मिथ्या बोलना नहीं था। वह कहते हैं कि वाणी का प्रयोजन यथार्थ ज्ञान कराना होना चाहिए, न कि भ्रम या कपट फैलाना। इसके विपरीत, जानबूझकर बोले गए झूठ— जैसे धोखा, कपट, और दूसरों को हानि पहुँचाने वाले कथन— 'असत्य' की श्रेणी में आते हैं। यहाँ तक कि जो बातें तर्क से सही प्रतीत होती हों, पर यदि उनका उद्देश्य किसी का अहित करना हो, तो वे भी सत्य नहीं मानी जाएँगी[15]। सत्य का पालन करने से क्या फल प्राप्त होता है, इसके बारे में पतञ्जलि योगसूत्र में कहा गया है— "सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्[16]।", अर्थात जब कोई व्यक्ति सत्य में पूरी तरह स्थित हो जाता है, तो उसकी वाणी में ऐसी शक्ति आ जाती है कि वह जो कहता है, वही सिद्ध हो जाता है। सत्य से मन की शुद्धि होती है, और व्यक्ति का जीवन विश्वास और नैतिकता से परिपूर्ण हो जाता है। सत्य आत्मा को शान्ति देता है, समाज में विश्वसनीयता बढ़ाता है और अन्ततः मोक्ष की ओर ले जाता है।

अस्तेय—

अस्तेय का सामान्य अर्थ है—चोरी न करना, परन्तु योगदर्शन में इसका अर्थ केवल

भौतिक चोरी तक सीमित न होकर, मन, वचन और क्रिया तीनों स्तरों पर किसी भी प्रकार की स्वार्थ या अधिकार-भाव से प्रेरित अनुचित ग्रहणवृत्ति के पूर्ण परित्याग से है। इस विषय में व्यासभाष्य में कहा गया है—"स्तेयमशास्त्रपूर्वकं द्रव्याणां परतः स्वीकरणम्, तत्प्रतिषेधः पुनरस्पृहारूपमस्तेयमिति[17]।", अर्थात् अशास्त्रीय अर्थात् अवैधरूप से दुसरों के पदार्थों को लेना स्तेय है । उसका प्रतिषेध अर्थात् उसको छोडना, अभिलाषा न करना अस्तेय है । इसी को राजमार्तण्ड में भोजराज ने स्पष्ट रूप से "स्तेयं परस्वापहरणं तदभावोऽस्तेयम्[18]।" योगसिद्धान्तचन्द्रिका के रचयिता नारायणतीर्थ भी यही बात विस्तृत रूप से स्पष्ट करते हैं: "स्तेयं परद्रव्यापहरणम्। परद्रव्यं= परस्य ममेदमिति स्वत्वास्पदं द्रव्यं, तस्यापहरणम्= अन्यायेन तस्मिन् ममेदमिति स्वत्वापादनम्[19]।" अर्थात् — दूसरे की जिस वस्तु पर वह 'यह मेरी है' ऐसा अधिकार मानता है, उस वस्तु को अन्यायपूर्वक अपने स्वामित्व में लेना ही 'स्तेय' है। नारायणतीर्थ आगे स्पष्ट करते हैं कि—"अन्याय" दो प्रकार का होता है — चोरी और बलपूर्वक लेना। इस विषय में वे कहते हैं— "परद्रव्यापहरणं चौर्याद्वाथ बलेन वा स्तेयं तस्यानाचरणमस्तेयं धर्मसाधनमिति[20]।" अर्थात् दूसरे की वस्तु को चोरी से या बलपूर्वक लेना 'स्तेय' है, और उस प्रवृत्ति से दूर रहना ही 'अस्तेय' है, जो धर्म की प्राप्ति का साधन है। वे यह भी कहते हैं कि चोरी में एक रूप वह भी है जिसमें व्यक्ति समुदाय की वस्तु का कोई भाग छिपा लेता है *जैसे किसी सहायता-राशि को पूरे समूह के लिए प्राप्त होने पर कोई व्यक्ति उसका एक भाग चुपचाप अपने लिए रख ले — यह भी चोरी का ही रूप है,* जिसे 'समुदायैकदेशप्रच्छादनम्' कहा गया है, और बल का रूप है शस्त्र दिखाना, डराना या शारीरिक आक्रमण द्वारा हडपना *जैसे किसी को डरा-धमकाकर उसकी संपत्ति छीन लेना,* जिसे 'शस्त्रादि प्रदर्शन, आघात आदि' कहा गया है। गीता में भी यही भावना व्यक्त होती है- यदृच्छालाभसन्तुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः। समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते[21]"। अर्थात् जो यथासम्भव प्राप्त वस्तु में सनतुष्ट रहता है, द्वनद्वों से परे है, और जिसमें ईर्ष्या नहीं है— वह कर्ता होकर भी कर्म से बंधता नहीं। इस प्रकार देखा जाए तो अस्तेय का अभ्यास साधक को लोभ, ईर्ष्या, सांग्रहवृत्ति और मानसिक चञ्चलता से मुक्त करता है तथा अनतःकरण की शुद्धि, सनतोष और वैराग्य की ओर ले जाता है— जो योगमार्ग की उन्नति के लिए आवश्यक हैं। अस्तेय केवल सामाजिक नैतिकता नहीं, बल्कि आनतरिक साधना की दृढ नींव है। अस्तेय के पालन से प्राप्त होने वाले फल के विषय में पतञ्जलि योगसूत्र में कहा गया है— "अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्[22]।" इसका अर्थ है कि जब योगी पूर्ण रूप से अस्तेय अर्थात चोरी न करना, पराई वस्तु के प्रति लोभ न करना और परद्रव्य की इच्छा का त्याग में स्थित हो जाता है, तब उसके पास स्वयं ही सभी प्रकार की सम्पत्ति, रत्न, साधन और सम्मान आकर एकत्र हो जाते हैं।"

ब्रह्मचर्य—

ब्रह्मचर्य का सामान्य अर्थ है— इन्द्रिय संयम, विशेषतः कामेन्द्रिय अर्थात् जननेन्द्रिय पर

नियन्त्रण; परन्तु योगदर्शन में इसका आशय केवल शारीरिक संयम तक सीमित नहीं है, अपितु मन, वचन और शरीर —इन तीनों स्तरों पर *कामवृत्ति की सम्पूर्ण निवृत्ति* है। व्यासभाष्य में ब्रह्मचर्य को "गुप्तेन्द्रियस्योपस्थस्य संयमः[23]" कहा गया है, अर्थात् उपस्थ का संयम ही ब्रह्मचर्य है। यह संयम केवल क्रिया में नहीं, बल्कि *स्मरण, कल्पना, स्पर्श, दर्शन, वार्ता, संकल्प आदि सूक्ष्म मानसिक प्रवृत्तियों* में भी अपेक्षित है। भोजराज की राजमार्तण्ड टीका में इसे "ब्रह्मचर्यमुपस्थसंयमः[24]" कहकर सीधे-सीधे परिभाषित किया गया है। योगसिद्धान्तचन्द्रिका में नारायणतीर्थ इसको और विस्तार देते हुए "कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा सर्वत्र मैथुनत्यागं ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते[25]" कहते हैं, जिसका तात्पर्य है—*कर्म, मन और वचन* से, *सभी काल, स्थान और अवस्था* में मैथुन की सम्पूर्ण निवृत्ति ही ब्रह्मचर्य है। इसी टीका में ब्रह्मचर्य के अष्टविध भङ्ग की बात कही गई है—"स्मरणं स्पर्शनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृतिरेव च[26]"—इन आठ प्रकार की वासना-सम्बन्धी प्रवृत्तियों का त्याग ही सच्चा ब्रह्मचर्य है। इस प्रकार ब्रह्मचर्य का अभ्यास न केवल संयम है, बल्कि *मन की ऊर्जा का संरक्षण* है, जिससे साधक के भीतर वीर्य अर्थात् आध्यात्मिक तेज, आत्मबल, ओजस का निर्माण होता है । ब्रह्मचर्य के पालन से प्राप्त होने वाले फल के सम्बन्ध में पतञ्जलि योगसूत्र में कहा गया है— "ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः।" इसका अर्थ है कि जब योगी सम्पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य में स्थित हो जाता है अर्थात अपने विचारों, वाणी और आचरण में पूर्ण संयम और पवित्रता बनाए रखता है तब वह दिव्य तेज, आत्मबल और आध्यात्मिक सामर्थ्य को प्राप्त करता है। यह आन्तरिक शक्ति न केवल उसकी साधना को दृढ़ बनाती है, बल्कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में स्थिरता, स्पष्टता और सफलता प्रदान करती है।

अपरिग्रह—

अपरिग्रह' यमों में पांचवाँ और अत्यन्त महत्वपूर्ण अङ्ग है। इसका सामान्य अर्थ होता है— 'संग्रह न करना' या 'ग्रहण न करना', किन्तु योगदर्शन के सन्दर्भ में इसका अर्थ केवल वस्तुओं के त्याग तक सीमित नहीं है, बल्कि इच्छाओं, लालसाओं और स्वत्व-बुद्धि से पूर्ण विराम तक विस्तृत है। व्यासभाष्य में अपरिग्रह को इस प्रकार परिभाषित किया गया है— "विषयाणामर्जनरक्षणक्षयसङ्गहिंसादोषदर्शनादस्वीकरणमपरिग्रह[27]"—अर्थात् विषयों अर्थात् भौतिक भोगों के अर्जन, रक्षण, हानि, सङ्ग और उनके लिए हिंसा आदि दोषों को देखकर उनका ग्रहण न करना ही अपरिग्रह है। राजमार्तण्ड में इसे कहा गया है "अपरिग्रहो भोगसाधनानामनङ्गीकारः[28]।" अर्थात् उपभोग की सामग्री को स्वीकार न करना। यह त्याग केवल वस्तुओं का नहीं, बल्कि उनसे जुड़ी अभिलाषा और स्वत्व की भावना का भी है। मणिप्रभा में अपरिग्रह को सम्बन्ध में कहा है— "अपरिग्रहो नाम देहयात्रानिर्वाहकातिरिक्तभोगसाधनास्वीकारः[29]।" केवल जीवनधारण के लिए आवश्यक साधनों तक सीमित रहना ही योग के पथ में उपयुक्त माना गया है। योगसिद्धान्तचन्द्रिका में यह स्पष्ट

किया गया है कि— केवल शरीर की आवश्यक जीवन-जीविका के लिए आवश्यक साधनों के अतिरिक्त किसी भी प्रकार के भोग-साधनों को स्वीकार न करना। भोग-सामग्री जैसे धन, सम्पत्ति, वस्त्र, सुविधा आदि के अर्जन, रक्षण, क्षय, मोह और उनके कारण उत्पन्न होने वाली हिंसा जैसे दोषों का विचार करके उनका त्याग करना ही अपरिग्रह कहलाता है। शास्त्रों में कहा गया है कि आपत्ति के समय आवश्यकता अनुसार न्यूनतम वस्तुओं का ग्रहण तो किया जा सकता है, किन्तु मन में संग्रह की प्रवृत्ति नहीं होनी चाहिए— यही वास्तविक अपरिग्रह है और इसका पालन प्रयत्नपूर्वक करना चाहिए। यहाँ तक कि केवल बाह्य वस्तुओं ही नहीं, बल्कि शरीर और इन्द्रियों के प्रति भी 'मैं' या 'मेरा' जैसी स्वत्व-बुद्धि का त्याग, तथा उनके प्रति अभिमान को छोड़ना भी अपरिग्रह के व्यापक स्वरूप में आता है। इस प्रकार, अपरिग्रह केवल वस्तु-त्याग नहीं, बल्कि ममता और अहङ्कार से मुक्ति की साधना है[30]। अपरिग्रह के पालन से प्राप्त होने वाले फल के सम्बन्ध में पतञ्जलि योगसूत्र में कहा गया है— "अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथंतासंबोधः[31]।" इसका अर्थ है कि जब साधक पूरी निष्ठा और स्थिरता से अपरिग्रह का पालन करता है— अर्थात् संग्रह की भावना, वस्तुओं का लोभ और अधिकार की प्रवृत्ति का त्याग करता है— तब उसे अपने पूर्वजन्मों की कथा, उनके कारण और जीवन के गूढ़ रहस्यों का स्पष्ट और सच्चा ज्ञान प्राप्त होता है। यह ज्ञान साधक को आत्मबोध की दिशा में अग्रसर करता है और उसके जीवन में गहन आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि का विकास करता है।

निष्कर्ष—

21वीं सदी के भौतिकतावादी, प्रतिस्पर्धात्मक और तनावपूर्ण वातावरण में, जहाँ नैतिक मूल्यों का ह्रास और मानसिक असंतुलन बढ़ता जा रहा है, वहाँ यम-साधना की प्रासङ्गिकता और भी गहन हो जाती है। अहिंसा से करुणा और सह अस्तित्व की भावना विकसित होती है; सत्य से पारदर्शिता और विश्वसनीयता की; अस्तेय से ईमानदारी और न्यायप्रियता की; ब्रह्मचर्य से आत्मसंयम और चरित्र की शुद्धता की; तथा अपरिग्रह से त्याग और सन्तुलित जीवन-दृष्टि की। इस प्रकार यम-साधना का प्रभाव व्यक्ति-जीवन तक सीमित न रहकर सामूहिक चेतना को भी उन्नत करता है। अतः स्पष्ट है कि यमों का सतत अभ्यास भारतीय ज्ञान परम्परा की उस गहन शिक्षापद्धति का अङ्ग है, जो न केवल आत्मबोध और मोक्ष की ओर अग्रसर करती है, बल्कि साधक को एक जिम्मेदार, नैतिक और संवेदनशील मानव बनने की प्रेरणा भी देती है। आधुनिक जीवन की चुनौतियों के बीच, यम-साधना भारतीय दर्शन की वह धरोहर है, जो व्यक्ति, समाज और सम्पूर्ण मानवता के लिए शान्ति, सन्तुलन और नैतिक उत्थान का मार्ग प्रशस्त करती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने भी इस दिशा में 'मानव मूल्य आधारित शिक्षा' तथा भारतीय ज्ञान परम्परा की पुनर्स्थापना पर विशेष बल दिया है, जिससे यह सिद्ध होता है कि यम-साधना आज की शिक्षा, समाज और संस्कृति के लिए भी उतनी ही आवश्यक है, जितनी कि साधना-पथ के लिए।

Endnotes

1. योगसूत्रव्यासभाष्य 1.1
2. योगसूत्र 1.3
3. योगसूत्र 2.29
4. महाभारत 12.321.7
5. योगसूत्र 2.30
6. योगसूत्रव्यासभाष्य 2.30
7. योगसूत्रमणिप्रभा 2.30
8. योगसूत्रभाष्य मणिप्रभा 2.30
9. योगसूत्रभाष्य योगसिद्धान्तचनद्रिका 2.30
10. योगसूत्र 2.35
11. मनुस्मृति .138
12. योगसूत्र-व्यासभाष्य 2.30
13. योगसूत्रभाष्य मणिप्रभा 2.30
14. योगसूत्रभाष्य योगसिद्धान्तचन्द्रिका 2.30
15. योगसूत्रभाष्य योगसिद्धान्तचन्द्रिका 2.30
16. योगसूत्र 2.36
17. व्यासभाष्यम् 2.30
18. योगसूत्रभाष्य राजमार्तण्ड 2.30
19. योगसूत्रभाष्य योगसिद्धान्तचन्द्रिका 2.30
20. योगसूत्रभाष्य योगसिद्धान्तचन्द्रिका 2.30
21. श्रीमद्भगवद्गीता 4.22
22. योगसूत्र 2.37
23. योगसूत्र व्यासभाष्य 2.30
24. योगसूत्रभाष्य राजमार्तण्ड 2.30
25. योगसूत्रभाष्य योगसिद्धान्तचन्द्रिका 2.30
26. योगसूत्रभाष्य योगसिद्धान्तचन्द्रिका 2.30
27. योगसूत्रव्यासभाष्य 2.30
28. योगसूत्रभाष्य राजमार्तण्ड 2.30
29. योगसूत्रभाष्य मणिप्रभा 2.30
30. योगसूत्रभाष्य योगसिद्धान्तचन्द्रिका 2.30
31. योगसूत्र 2.39

Bibliography

- अभेदानन्द, स्वामी। (1998). *योगदर्शन और योगसाधना*. कोलकाता: श्रीरामकृष्ण वेदान्त मठ।
- भोजदेव। (1913). *पातञ्जलयोगदर्शनम्* (ढुण्डिराज शास्त्री एवं हरेकृष्ण दास, सम्पा०). वाराणसी।

- भर्गानन्द, स्वामी। (2017). *पातञ्जल योगदर्शन*. कोलकाता: उद्बोधन कार्यालय।
- भट्टाचार्य, डॉ० रामशंकर। (2018). *पातञ्जलयोगसूत्रम्*. कोलकाता: भारतीय विद्या प्रकाशन।
- भट्टाचार्य, दिव्येन्दु। (2017). *योगशिक्षा और स्वधारणा*. कोलकाता: दिर्य्य प्रकाशनी।
- भट्टाचार्य, उदयादित्य। (2018). *योगशिक्षा में आत्मबोध और उसका विकास*. कोलकाता: रीता बुक एजेंसी।
- मनु। (2019). *मनुस्मृति* (रामेश्वर भट्ट, सम्पा०). दिल्ली: चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान।
- सम्पूर्णानन्द, डॉ०। (2006). *योगदर्शन*. लखनऊ: उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान।
- स्वामी रामसुखदास। (2024). *भगवद्गीता*. लखनऊ: गीता प्रेस।
- शिक्षा मन्त्रालय। (2020). *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020*. नई दिल्ली: भारत सरकार।
- Gita Supersite. (n.d.). *योगसूत्र*. Retrieved August 30, 2025, from https://www.gitasupersite.iitk.ac.in
- Patanjali Yoga Sutra. (n.d.). *patanjaliyogasutra.in*. Retrieved August 30, 2025, from https://patanjaliyogasutra.in/
- विकिस्रोतः। (n.d.). *योगसूत्राणि (भाष्यसहितम्)*. Retrieved August 30, 2025, from https://sa.wikisource.org

———